International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 44-46

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 44-46
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 24-11-2014
Accepted: 17-12-2014

डॉ देवेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, हल्द्वानी,
नैनीताल

Correspondence
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी
अकादमिक एसोसिएट ज्योतिष विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

जानकीजीवनम् महाकाव्य में कवि की उद्‌भावना

डॉ देवेश कुमार मिश्र

यद्यपि बीसवीं शताब्दी में लिखे गये रामकथाश्रित महाकाव्यों की संख्या कम नहीं है, तथापि श्रीराजेन्द्र मिश्र प्रणीत 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य का अपना अलग वैशिष्ट्य है । यह महाकाव्य 1977 ई0 में रचा गया है, इसमें इक्कीस सर्ग और श्लोकों की संख्या 692 है। प्रस्तुत महाकाव्य की कथा का आरम्भ अयोनिजा सीता के प्राकट्य से हुआ है । प्रारम्भिक नौ सर्गो में सीता के वधू बनकर अयोध्या राजभवन में आना, राजवैभव के सुखानन्द आदि के वर्णन है । इसी के बाद कवि ने दसवें सर्ग से सीता की जीवनधारा में एक नवीन मार्ग की उद्‌भावना कराया है । यहॉ पर इस महाकाव्य के कथावस्तु का वर्णन अभीष्ट नहीं है बल्कि सीताचरित में कवि द्वारा लायी गयी नवीन प्रसूति का अध्ययन करना मूलभाव है । .इस महाकाव्य के दो प्रेरणास्रोत हैं – प्रथमतः आदि कवि का वाल्मीकी रामायण और द्वितीयतः कवि का सामयिक बोध व स्वतन्त्र आत्मचिन्तन । सम्पूर्ण कथा का विन्यास इन्हीं दो स्रोतों पर आधारित है । इस महाकाव्य में एक विशेष तथ्य कवि की आस्था का प्रतीक है जो इस प्रकार है –

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में वर्णित सीतानिर्वासन की घटना को कवि ने पूरी तरह से नकार दिया । यह घटना बौद्धो और जैनों के धार्मिक विद्वेष व सनातन धर्म विरोधियों की प्रतिकूल भावना का परिणाम थी, जो 700 वर्षों के (बुद्ध काल से लेकर वृहद्रथ के समय तक) शासन में सत्य घटना बन गयी । श्री मिश्र ने अवश्य माना है कि सीता निर्वासन की घटना को राम कथा के आदि स्रष्टा वाल्मीकि ने स्वीकार नहीं किया था और न हीं इसे लिखा था । वाल्मीकि की रामायण का वर्णन अयोध्या वर्णन से प्रारम्भ होता है तथा युद्धकाण्ड की फलश्रुति बताकर वर्णनविश्राम हो जाता है । जितने विवादास्पद प्रसंग है, वे सब राम कथा की इस परिधि से बाहर है । जैसे सीतानिर्वासन, शम्बूक वध आदि । सत्य तो यह है कि मर्यादापुरूषोत्तम और योगेश्वर ये दोनों रामायण महाभारत श्रीमद्‌भागवत आदि के मेरूदण्ड रहे है । ये चरित्र सनातन धर्म के विरोधी बौद्ध व जैनों को 'नारायण' जैसे नहीं लगे होंगे इसी के परिणामस्वरूप राम और कृष्ण के चरित्र को विद्वेषपूर्ण भाव से जनता के समकक्ष प्राकृत सिद्ध करने की परम्परा का आरम्भ हुआ होगा । कुछ तथ्य देखे जांय – दशरथ जातक में राम और सीता को भाई बहन बताया गया है । उसके बाद भी अन्ततः पति पत्नी के रूप में प्रस्तुत भी कर दिया गया । स्वयम्भू प्रणीत पउमचरिय में लक्ष्मण को राम से अधिक तेजस्वी, जितेन्द्रिय व शक्तिशाली बताया गया । इसी प्रकार आनन्दरामायण के विलासकाण्ड में राम की अनेक प्रियतमायें व उनके भोग विलासादि के अमर्यादित चित्रण भी है । अग्निपरीक्षिता सीता को क्रूर, हृदयहीन और दम्भी राम के द्वारा सहजता से निर्वासित करा दिया गया है । फलतः आनन्दरामायण में राम की छवि को खूब धूमिल करने का प्रयास किया गया है । कतिपय रचनाकारों ने किंचित मर्यादा का पालन किया किन्तु जिन्होंने कुछ भी नहीं मॉगा वे राम और कृष्ण पर एक निष्ठावान जैनी मॉग ली । रविषेण आदि इसके प्रमाण भी है ।

उत्तररामचिरतम् में भवभूति के द्वारा सीता निर्वासन के सन्दर्भ में लोकाराधन को प्रतिष्ठित किया गया –

> **स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि**
> **आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा ।।**

सीतावियोगी रामचन्द्र की पुटपाक प्रतीकाश अन्तर्व्यवस्था में उदात्त और आदर्शचरित का पूर्ण प्रयत्न भी भवभूति के द्वारा किये गये, किन्तु रामायण के उत्तरकाण्ड में जो सन्दर्भ है उसमें लोकाराधान की चर्चा नहीं है । वहॉ पर तो लोकापवाद का भय सीता परित्याग के मूल में मात्र एक वस्तुं है । इस सन्दर्भ में श्री मिश्र जी के विचार इस प्रकार अनुमानित किये जा रहे है –

पहला तो यह कि सीता की अग्नि परीक्षा की साक्षी ब्रह्मा से लेकर हनुमान जामवन्त आदि और स्वयं

राम व वाल्मीकी भी सीता को सर्वथा निष्पाप स्वीकार करते है । जानकीजीवनी के आधार पर दूसरी बात यह है कि रावण के घर में स्थित सीता को ग्रहण करने के कारण राम जितने लोकनिन्दित हैं, उससे भी कहीं अधिक वह समाज निन्दित है जो निष्पाप सीता को लांक्षित कर रहा है[1] –

कीदृशं हृदय तस्य सीता सम्भोगजं सुखं
रक्षसां वशमापन्नां कथं रामो नकुत्स्यति । उत्तरकाण्ड, 43
नृशंसं प्रतिभाति मे ..... उत्तरकाण्ड

इस बात पर भी विवाद है कि उत्तरकाण्ड वाल्मीकि की रचना है की नहीं और यदि है तो निन्दित सीता और निन्दित समाज के बीच में समाधान मिलना चाहिए । वास्तविक दण्ड निन्दित समाज को मिले या निन्दित सीता को ?

वाल्मीकि रामायण में लोक को ही सीता का चरित्र निन्दक बताया गया है न कि किसी धोबी को । शायद इन्हीं सब विवादों ने मिश्र जी को जानकीजीवनम् रचने की प्रेरणा दी हो । क्योंकि इनकी दृष्टि में निन्दित समाज ही अपराधी है । फलस्वरूप दण्ड भी समाज को ही मिलना चाहिए । इन्होंने सीतानिर्वासन आदि से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने का सफल प्रयास किया है । ये वशिष्ठगोत्रीय ब्राह्मण है इन्होंने अपने काव्य में मुखरस्वर में कहा है कि मुझ वशिष्ठ के जीवित रहते यह दुरन्त पाप नहीं होगा [2] । किसी एक व्यक्ति का मत जनसमूह का मत नहीं हो सकता [3] ।

सामाजिक मत के अनुसार कुलगुरू वसिष्ठ ने विराट् सभा का आयोजन कर उस रजक की उपस्थिति में सर्वसम्मतरीत्या उक्त समस्या का तर्क एवं धर्मशास्त्र के अनुसार देवी सीता को शुद्ध पवित्र चरित्रान्विता सिद्ध कर रजक को उसकी पश्चात्तापाग्नि में ही तपाया है । सभा का उद्देश्य बताते हुए वशिष्ठ ने कहा है – आनेवाले युग में लोग यह न कहें कि धर्मतत्व का महासिन्धु वसिष्ठ क्या मर गया था जिसके परिणामस्वरूप यह दारूण अनर्थ हुआ । बस इसी कलंक से बचने के लिये मैंने , घटना घटाने से पूर्व ही यह प्रयास (सभा का अयोजन कर उसमें निर्णय करने का) किया है ।

विषय निर्णय में महाकाव्य सम्बन्धी औचित्य प्रदान करने के लिए कवि ने अयोनिजा देवी सीता के आविर्भाव के रूप में काव्य का मंगलाचरण, ग्रीष्म की प्रचण्डता के वर्णन द्वारा ग्रीष्मऋतु का वर्णन, सीता सम्प्राप्ति के पश्चात् वर्षा का वर्णन, उपवन प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन, युवतियों के पुष्पावचयन का वर्णन, पुत्र जन्मोत्सव, नगर वर्णन आदि तत्तत् सर्गों में बडी कमनीयता के साथ किया है । वस्तुओं के चित्रण में कवि अत्यन्त सजग है । प्रकृति वर्णन में कवि की निरीक्षण शक्ति को उसकी मौलिक कल्पना शक्ति परिपुष्ट करती हुई प्रतीत होती है । प्रकृत काव्य में वर्णित पुष्पवाटिका प्रसंग, सीता का शैशव वर्णन अयोध्या के राजभवन में होली का हुडदंग, सीता की वनचर्या, अग्निपरीक्षा, सीता निर्वासन प्रसंग, तथा रामायण गान कवि के मौलिक चिन्तन एवं कवि दृष्टि के साक्षी है । इनके अतिरिक्त शैशव वर्णन इतना लंबा संभवतः पूरे दो सहस्र वर्षों में पहली बार इतनी मनोज्ञता से प्रस्तुत किया गया है । सीता की वयःसन्धि का मनोवैज्ञानिक वर्णन भी कवि का अपना है यहॉ विशेष उल्लेखनीय ह ै कि कवि मेंसर्वत्र संयम परिलक्षित होता है । शैशव वर्णन लंबा हो जाने पर विरसता को जन्म नहीं देता । श्रृंगार रस के चित्रण में कवि नितान्त संयम से काम लेता है । न इतना अधिक कि अश्लीलता की कोटि को स्पर्श करें और न इतना कम कि हृदय में गुदगुदी ही पैदा न करे । नवम सर्ग में सीता की रति क्रीडा का उल्लेख कवि इस प्रकार करता है –

अन्तःपुरप्रतोलीषु चरन्ती निभुतम्मुदा ।
स्तम्भकोणनिलीनेन प्रियेण गोपितात्मना ।।
मुंचमुंचेति सव्रीडं भणन्ती मृदुवाचिकम् ।
कदाचिच्च दृढं बद्ध्वा भुजयोराशु चुम्बिता [4] ।।

इस प्रकार नानाविध खेल – खिलवाडों मे ही सीता सुरत क्रीडओं से अखण्ड आनन्दभार का लाभ पाया करती थी –

प्रभातकुन्दसंकोचा लोलवत्सतरीगतिः ।
त्रपाभारनिरूद्धापि कान्तानुनयचंचला ।।
शनैस्तदंकमासाद्य न किंचदिपि कुर्वती ।
अमन्दनन्दसन्दोहं लेभे प्रियतमोद्यमैः [5] ।।

वस्तुतः जानकीजीवनम् के रचयिता मध्यम मार्ग के उपासक है । सभी विषयों में पात्रों का चित्रण सुरूचिपूर्ण है। सीता हमारे सम्मुख आठ रूपों में उपस्थित होती है – बाल सीता, उपवर सीता, विरहिणी सीता, भग्नप्रेम सीता, तपस्विनी सीता, विवाहवेषभूषिता सीता, विलासिनी सीता, उर्जस्वला सीता, और माता सीता । ऐसी भिन्न – भिन्न अवस्थाओं को प्रदर्शित करने वाली सीता के रेखांकित, विकसनशील और रम्य छटाओं के तथा प्रत्येक छटा के सजीव चित्र कवि ने बडे विस्तार से दक्षता से और पूरी तन्मयता से अंकित किये हैं । इस प्रकार अनेक अवसरों पर वर्णित सीता में प्रत्येक अवसर पर अपूर्व नवीनता परिलक्षित होती है । निश्चय ही कवि में कल्पना का दारिद्रय नहीं है ।

सम्पूर्ण काव्य को देखने है पर यह तथ्य सामने आता है कि जानकीजीवनम काव्य एक विशाल सुसज्जित प्रासाद के समान है, जिसमें सभी उपयोगी वस्तुएॅ यथास्थान सुचारू रूप से अलंकृत कर रखी

गई है, जिनके चुनाव तथा रमणीयता मेंसर्वत्र विदग्धता, सुसंस्कृत तथा नागरिकता परिलक्षित होती है । वस्तुतः सफल काव्यरचनाकार के लिए हृदय में किसी प्रकार के गहन वेदना का होना अत्यावश्यक होता है । जिस प्रकार की गहरी अन्तर्वेदना होती है, उसी प्रकार की काव्यधारा निसर्गतः सफलता से प्रवाहित होती है और सहृदय समाज उसे पढकर रसानन्द का अनुभव करता है । प्रकृत काव्य के कवि के मन में सीता के निष्पाप चरित्र की निन्दा करनेवाले समाज के प्रति उत्पन्न तिरस्कार घृणा की वेदना धधक उठी और इसीलिए समानधर्मा – अर्थात संवेदनीय सीता की करूण वेदना के प्रदर्शन के रूप में स्वयं ने प्रखर क्रन्दन किया है ।

निश्चय ही कवि ने अपने पक्ष का मण्डन बडे तर्क से किया है जिसमें कहीं उद्वेग लक्षित नहीं होता है । काव्य में पदे – पदे पूर्ववर्ती कवियों महाकवि कालिदास आदि के प्रभाव का अनुभव होता है । काव्य का प्रधानरस है – वीर और गौण रूप में यथास्थान अन्य रसों – श्रृंगार, भयानक, करूण और शान्त की योजना की गई है । कविता को अलंकारों की सजावट, शब्दों के चमत्कार से दूर रखा गया है । काव्य में सरलता तथा हृदय को आकर्षित करनेवाली मनोहारिता है और पर्याप्त गतिशीलता है । छन्द योजना की दृष्टि से पारंपरिक छन्दों का प्रयोग कर क्षुण्ण मार्ग से स्वयं को स्वतन्त्र रखने के लिए कवि ने **मैथिली तथा स्यन्दिका नवीन छन्दों का आविष्कार कर अपने वैदुष्य को प्रकट किया है** । सूक्तियों के प्रयोग से काव्य की शोभा बढ गई है । यथा –

स्वकर्मपाकं भजते मनुष्यः,
अमोघपथ्यौषधिसेवनेन
किं न यान्ति द्रुतमेव नीरूजः,
कालोचितं प्रकटयन्ति वचो विधिज्ञाः ।
प्रवर्षणैः किं ज्वलिते हि शस्ये कालोचितंचैव विभाति यत्नः ।।

श्री राजेन्द्रमिश्र उन कवियों में से नहीं है जो इधर उधर से मधुकरी करके लाते हो और अपनी कविता को शोभायुक्त कर लेते हो –

हठादाकृष्टानां कतिपयपदानां रचयिता ।

किन्तु उनके कवि का भीतर तक कहीं पता नहीं होता ।

निष्कर्ष : –

जानकीजीवनम् महाकाव्य आरम्भ से ही कवित्वपूर्ण है । श्रीराम तथा जानकी के पावन चरित्र को कमनीयता से अंकित कर कवि ने प्रकृत काव्य को सिद्धरस महाकाव्य की कोटि में ला रखा है । नव्यातिनव्यउन्मेषों के कारण विलसित वैभव वाले तथा अखण्डानन्दरूपी पुष्पासव के कारण रूचिर इस काव्य की जड निश्चय ही कालिदास की कविता है, नैषधीयचरितम् की वाणी ही इसका स्कन्ध प्रदेश है, गीतगोविन्द के गीत ही इसके पत्ते है, श्री विल्हण की सूक्तियॉ इसके पुष्प है तथा पण्डितराज जगन्नाथ के काव्य की गरिमा ही इस काव्य का एकमात्र पुण्य फल है, – कवि का यह कथन काव्य में पूर्णरूप से चरितार्थ है । ऐसा मुसलदेव गॉवरकर का भी मानना है । शास्त्रीय शैली को आत्मसात करनेवाला यह काव्य बीसवी शती का उत्कृष्ट काव्य है ।

सन्दर्भ –

1. वाल्मीकी रामायण – उत्तरकाण्ड : 43 सर्ग
2. जानकीजीवनम् महाकाव्य – 18/65
3. पठनीय जानकीजीवनम् – 18/70.–71
4. 9/48, 9/49
5. 62/63